अ) कबीर का धर्माचरण संबंधी चित्रण- विचार और आचार-कर्म काण्ड- बाह्याचार।

अ) कबीर का धर्माचरण सम्बन्धी चित्रण -
विचार और आचार, कर्मकाण्ड, बाह्याचार ।

धर्म की परिभाषा --

धर्म की अनेक परिभाषाओं में से निम्न बहुत ही प्रसिध्द हैं ।

- १. " आचार प्रभवो धर्म: ।
- २. चोदना लक्षणायो धर्म: ।
- ३. ` धारणाध्दर्ममित्याहु: धर्मो धारयते प्रजा: ।
  यत्स्याद धारणासंयुक्तं स धर्म इति निश्चय: ।। "
- ४. यतोऽभ्युदय निश्रेयस सिध्दि: स: धर्म: ।। " २६

धर्म की परिभाषाओं पर विचार करने पर उनके दो स्थूल पक्ष दिखायी देते हैं । उन्हे हम धर्म के साधारण और विशेष स्वरूप कह सकते हैं । विशेष स्वरूप व्यक्ति, देश और काल की सीमाओं में बँधा रहता हैं । इसी कारण विविध देशों के धर्मों में हमें अनेक विभेद दिखायी देते हैं । धर्म का साधारण स्वरूप देश, काल और व्यक्ति की सीमाओं पर निर्भर रहता हैं और प्राय: सभी देशों के धर्मों में समान रूप से परिव्याप्त हैं । इसमें मानव मात्र के नैतिक नियमों को प्रतिष्ठा रहती हैं । धर्म का यही स्वरूप मानव धर्म के नाम से प्रसिध्द हैं । विश्व के धर्म संस्थापकों ने प्राय: अपने धर्म में धर्म के दोनों पक्षों की प्रतिष्ठा की हैं । किन्तु उनके उठते ही धर्म के ठेकेदार धर्म के विशेष स्वरूप को लेकर सदैव धर्म का अनर्थ करते रहे हैं । इसी कारण किसी भी धर्म का स्वरूप विकृत हुए बिना नहीं रहा । किन्तु यह विकृत स्वरूप चिरस्थायी कभी नहीं रहा । समय के प्रभाव में सदैव उसकी प्रतिक्रिया उदय होती रही । प्रतिक्रिया रूप में उद्भूत धर्म के इन साधारण स्वरूपों में सहजाचरण, सहजसाधना, सहजोपासना विधि पर सदैव ही ध्यान रखा गया । इन सब में मानव धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा करने का प्रयत्न होता हैं । कबीर की धार्मिक विचारधारा का उदय भी हिन्दू और इस्लाम धर्मों के पाखण्डपूर्ण

एवं विकृत रूप की प्रतिक्रिया के रूप में ही है । यही कारण है कि इसे सहजधर्म, मानवधर्म, निजधर्म या हित धर्म कहते हैं ।

कबीर के आचार और विचार --

"दर्शन और धर्म का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । दर्शनशास्त्र के द्वारा सुचिन्तित, आध्यात्मिक तत्वज्ञान के ऊपर ही भारतीय धर्म की प्राण प्रतिष्ठा है । बिना धार्मिक आचार के द्वारा कार्यान्वित हुए दर्शन की स्थिति निष्फल है और बिना दार्शनिक विचार के द्वारा परिपुष्ट हुए धर्म की सत्ता अप्रतिष्ठित है ।" [२७]

भारतीय दर्शन वैयक्तिक चेतना के सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक परिष्कार की ओर विशेष जागरूक रहा है । मानव जीवन की भौतिक समृद्धियों में सुधार करने की ओर इसने विशेष रुचि नहीं दिखलायी । यदि दर्शनशास्त्र समाज व्यवस्था में रुचि दिखलाते हैं तो इसलिए कि व्यक्ति की अध्यात्मिक प्रगति के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ प्रस्तुत कर दी जाएँ । धर्म मूलक व्यवहार को गौरव देने के कारण स्वार्थ वृत्तियों के उन्मूलन तथा निम्न प्रवृत्तियों के शोधन द्वारा आत्मशुद्धि करना है । ये दोनों ही दृष्टिकोण स्वानुभूति में उतरकर जीवन ऊर्ध्वमुखी एवं प्रगतिशील बनाते हैं तभी वैयक्तिक संस्कृति का मार्ग प्रशस्त होता है । कबीर ने दर्शन और धर्म को व्यक्ति के विकास की सारणियों के रूप में ही देखा । जहाँ ये दोनों इसमें बाधक हुए वहीं कबीर ने इनकी आलोचना की है ।

प्राय: दार्शनिकों ने तत्व विवेचन में बुद्धिमूलक तर्क को ही प्रधानता दी है । यद्यपि वेदान्त सदैव तर्क के विरुद्ध रहा है । वेदान्त सूत्र और उपनिषाद बराबर तर्क की अप्रतिष्ठा घोषित करते हैं । उन्हीं के समान कबीर ने स्पष्ट कह दिया कि जो तर्क के बल पर तत्व की द्वैतता सिद्ध करना चाहते हैं उनकी बुद्धि बड़ी स्थूल है । यह कबीर की दर्शन क्षेत्र को पहली सुधारात्मक विशेषता है और दूसरी विशेषता तत्व-स्वरूप-निरूपण सम्बन्धी है । तत्व निरूपण में

उन्होंने अनुभूति को महत्व दिया है । उनके तत्व-निरूपण में व्यक्तित्व की अमिट छाप पडी है । एक ओर तो वे वेद सम्मत बने रहते हैं, दूसरी ओर एकेश्वरवाद के द्वारा मुसलमानों से सम्बन्ध बनाये रखते हैं ।

दर्शन का अर्थ दिखाना होता है । ईश्वर, जीव, जगत् इनके बारे में सत्य दर्शन कराना है तथा इनके आपसी सम्बन्धों पर प्रकाश डालना है । इस दृष्टि में " कबीर की आध्यात्मिक क्षुधा और आकांक्षा विश्वग्राही है । वह कुछ भी छोडना नहीं चाहती । इसीलिए वह ग्रहणशील है, वर्जनशील नहीं । इसी लिए उन्होंने हिन्दु,मुसलमान,सूफी, वैष्णव, योगी, प्रभृति सब साधनाओं को जोर से पकड रखा है ।" [२८]

इसीलिए डा.गोविन्द त्रिगुणायत का कथन है कि -

> " कबीर का ब्रह्म निरूपण वैदिक एकेश्वरवादी होते हुए भी सर्वात्मवाद और परात्परवाद के अधिक समीप है ।" [२९]

कबीर के मतानुसार ब्रह्म एक, अद्वैत और भेदातीत है । वह अव्यक्त, अतीन्द्रिय और अप्रेम है । वह स्वयं प्रकाश और स्वयं सिद्ध है । वह सच्चिदानन्द स्वरूप है । भावनागम्य तथा बुध्दि से परे विराट स्वरूप है । कबीर के मतानुसार जीव भी ब्रह्मांश है । जीव और ब्रह्म का अभिन्न सम्बन्ध है ।

> " कहु कबीर इहु राम की अंसु ।
> जस कागज पर मिटै न मंसु ।।" [३०]

कबीर ने जीव को निराकार,अनन्त एवं निर्विकार निरूपित किया है । वह सन्सार के नाम रूप से परे है । वह न जन्म लेता है, न मरता है । वे जीव को स्वयं प्रकाश,चैतन्य तथा आनन्द स्वरूप मानते हैं । जीव ईश्वर का अंश है । किन्तु ईश्वर से विलग होने पर आत्म स्वरूप को भूलकर सन्सारी हो जाता है । उसी प्रकार अविद्या के निकल जानेपर अपने स्वरूप को प्राप्त होता है । जीव और आत्मा की विवेचना करते हुए आत्मा की व्यावहारिक प्रतीती को कबीर ने जीव के नाम से

अभिहित किया है । आत्मा अपने स्वरूप लक्षण के अनुसार नित्य, मुक्त, शुद्ध, चैतन्य, अजर, अमर है । परन्तु माया के कारण भ्रम से अपने को करता - भरता और शरीरी समझा लेती है । आत्मा मूल सत्ता रूप एक है । यह अनेक जीव भ्रम तथा अज्ञान के कारण ही दिखायी पडते हैं । कबीर कहते हैं --

" जल में कुंभ, कुंभ में जल बाहर भीतर पानी ।
फूटा कुंभ जल, जल ही समाना, यह तथ कथ्यौ गियानी ।। " [३१]

वस्तुत: यह सृष्टि इस प्रकार है कि संसार के जल में शरीर रूपी एक घट है, जिस में भीतर जल विद्यमान है - शरीर में समस्त सत्व इस सृष्टि के ही है - एवं उसके बाहर तो संसार रूपी जल है ही । शरीर रूपी घट के फट जाने पर शरीर-घट स्थित जल रूपी आत्मा शेष संसार में व्याप्त परमात्मा से मिल जाती है ।

" दरियाव की लहर दरियाव है जी
दरियाव और लहर में भिन्न कोयम ।
उठे तो नीर है, बैठे तो नीर है
कहो जो दूसरा किस तरह होयम ।। "[३२]

समुद्र और समुद्र की तरंग में कोई भेद नहीं है, केवल नाम और रूप का भेद है । इसी प्रकार जगत ही ब्रह्म है और ब्रह्म ही जगत है ।

कबीर के मतानुसार जीव की अवस्थाएँ अज्ञानी, जिज्ञासु साधक एवं जीवन्मुक्त है और जीव-ब्रह्म-सम्बन्ध में माया के कारण बाधा पडती है ।

" राम तेरी माया दुर्द मचावै ।
गति मति बाकी समुझि परै नहीं ।
सुर नर मुनि ही नचावै ।।

कबीर बीजक शब्द -१

जीव-ब्रह्म का ऐक्य निर्माण करने के लिए कबीर ने जिस साधना पध्दति का अवलम्ब किया उस में कबीर ने भारतीय ब्रह्मवाद सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद, हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद और वैष्णवों के अहिंसावाद तथा प्रपत्तिवाद का मेल कर के अपना पंथ खडा किया ।

नाथ पंथियों से कबीर को ब्रह्मचर्य, वाक् संयम, शारीरिक शौच, मानसिक शुध्दता, ज्ञान के प्रति निष्ठा, बाह्य आचरणों के प्रति अनादर, आन्तरिक शुध्दि, मद्य, मांसादि के पूर्ण बहिष्कार के विचार मिले । जिन्होंने कबीर मत को चारित्रिक बल प्रदान किया और परिणामत: सम्पूर्ण भक्तिकाल में चारित्रिक दृढता का वैलक्षण्य उत्तम बन गया । उन्होंने नाथ पंथी गुरु-महत्ता को बहुत महत्व दिया । हठयोग साधना पर जोर न देते हुए कबीर सहज साधना को मानते हैं । सूफी प्रेम साधना का प्रभाव कबीर साधना पर स्पष्ट दिखायी देता है । उसी के कारण माधुर्य भाव-भक्ति उनकी साधना की विशेषता रही है ।

समाज की स्थिति को सुस्थिर रखनेवाला तत्व धर्म है । यों तो धर्म शब्द बडा व्यापक अर्थवाही है । परंतु यहाँ उसका प्रयोग लोक प्रचलित संकुचित अर्थ में ही हम कर रहे हैं । इसके अंतर्गत प्रमुख रूप से धार्मिक विश्वास, रीति-रिवाज उपासना-विधि, और साधना-पध्दतियाँ आदि हैं । कबीर का युग अंधानुकरण एवं अंधविश्वास का था । लोग धर्म का पालन हृदय से नहीं, भय से किया करते थे । इसलिए कबीर ने मिथ्याचार और बाह्याडम्बरों पर करारा व्यंग्य किया । उनका खण्डन किया । समाज में सात्विकता और आचरण-प्रवणता का प्रचार किया । ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया, मांस-भक्षण, मद्य-पान का निषेध किया । क्रोध, तृष्णा, कपट आदि कुप्रवृत्तियों का विरोध किया । सरलता, हृदय की निष्कपटता, मन की शुध्दता आदि का प्रचार किया और सबसे बडा कार्य किया, वह समाज में साम्यवाद की प्रतिष्ठा का । समाज में ऊँच-नीच, ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र आदि के भेदभाव को आश्रय देनेवालों की अच्छी खबर ली, दृढता से उसकी निरर्थकता सिध्द की । उनका दृढ विश्वास था कि शान्ति तभी मिल सकती है, जब मनुष्य में सम दृष्टि आ जाती है । कबीर का साम्यवाद एक ओर तो इस्लामिक साम्यवाद से प्रभावित

प्रतीत होता है और दूसरी ओर हिन्दुओं के अद्वैतवादी आध्यात्मिक साम्यवाद से भी अनुप्राणित है। उनका साम्यवाद इस्लामिक साम्यवाद की व्यावहारिकता और भारतीय अद्वैतवाद की ज्ञानात्मकता के सुन्दर समन्वय से बना था।

धर्माडम्बरों, अंधविश्वासों के आलोचक तथा समाज सुधारक --

"मध्ययुगीन सामाजिक संगठन में हिन्दू व मुसलमान के दो वर्ग अपने-अपने समाज की श्रेष्ठता के प्रति अंधविश्वासी एवं संकीर्ण मनोवृत्ति से युक्त होने के कारण पारस्परिक असहिष्णुता से ग्रसित संघर्षशील स्थिति में थे। हिन्दू-समाज सम्प्रदायों, जातियों एवं उपजातियों के अनेक भेदों में विभक्त था। मुसलमानों में भी जाति-भेद एवं वर्ग-भेद पनप रहे थे, फिर भी सामाजिक संगठन जितना उनमें था, हिन्दुओं में न था। दोनों ही समाजों के लोग भूत-प्रेत, जादू-टोना, ज्योतिष एवं चमत्कारों आदि में विश्वास रखते थे। नारी की व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्राय: समाप्त हो चुकी थी, उसके व्यक्तित्व के विकास के प्राय: सभी मार्ग बन्द थे। उच्च-शिक्षा का प्रचार विशेषाधिकार प्राप्त कुछ लोगों तक ही सीमित था। धन का महत्व बढ़ता जा रहा था। व्यक्ति की श्रेष्ठता या उच्चता का निर्णय उसके चरित्र से नहीं, वरन् आर्थिक समृद्धि या उच्च जाति में जन्म लेने आदि के आधार पर होने लगा था। जुआ-चोरी, शराब, मांसाहार, छल-कपट, लूट-मार एवं वेश्या-वृत्ति, गुलाम-प्रथा आदि दूषण समाज में बढ़ने लगे थे।" [33]

महात्मा कबीर के विश्वासों की प्रथम भूमिका ध्वंसात्मक है। उन्होंने सभी धर्मों के सभी अंधविश्वासों, पाखण्डों एवं बाह्याडम्बरों का बहुत विरोध किया था। किन्तु ये विरोध जड़तामूलक नहीं, पूर्ण बुद्धिवादी है।

"कबीर ने सभी रूढ़ियों, आडम्बरों और पाखण्डों का खुलकर खण्डन करके समाज में निरन्तर चलनेवाली हलचल पैदा कर दी। 'मसि-कागद' को न छूने वाले कबीर ने काशी के पण्डितों, मुल्लाओं और काज़ियों को जिस साहस और निर्भीकता के साथ ललकारा, वह इतिहास की अभूतपूर्व घटना थी।" [34]

" पण्डित देखहु मन महँ जानि ।
कहँ धौं छुति कहा ने उपजि, तब ही छुति तब मानि ।" [३५]

छुआ-छूत पर तर्क उपस्थित करते हुए वे पाण्डे-पण्डितों से प्रश्न करते हैं - " तुम किस लिए छुआछूत मानते हो ? वास्तव में ऐसा कोई स्थान भी है, जो पूर्ण रूपेण पवित्र है ?

स्नान-संध्या, तपस्या, छाट्कर्म आदि पर भी उन्होंने कड़ी आलोचना की है ।

" संझि आ प्रात इस स्नानु कराहिं ।
जिऊँ भये दादूर पानी माहिं ।।" [३६]

प्रात:काल तथा सायंकाल के समय स्नान करके अगर मुक्ति प्राप्त होती तो मेंढक तो हमेशा पानी में ही रहा करता है, उसे कब की मुक्ति प्राप्त होनी चाहिए थी । इससे यह स्पष्ट है कि बार-बार नहाना, स्नान-संध्या करना मिथ्याडम्बर ही है ।

" संझ्या तरपन अरु छाट्करमाँ ।
लागि रहे इनके आसरमाँ ।
गायत्री जुग चार पढ़ाई ।
पूछौं जाइ मुकुति किन पाई ।" [३७]

संध्या, तर्पण और छाट् कर्मादि कर्मों में लोग लगे रहते हैं । गायत्री मंत्र का पठन करते रहते हैं । कबीरदास इन बातों की खिल्ली उड़ाते हुए कहते हैं, इन में से किसे मुक्ति मिली है ? अर्थात स्पष्ट है कि एक ने भी मुक्ति प्राप्त नहीं की है । अर्थात यह सभी मिथ्याचार है ।

" क्या संध्या-तर्पन के कीन्हें, जो नहिं तत् विचारा ।
मूँड़मुँड़ाये सिर जय रखाये, क्या तन लाये छारा ।।" [३८]

बाह्याडम्बरों की निरर्थकता स्पष्ट करते हुए तथा ईश्वरीतत्व के अनुभव पर जोर देते हुए कबीर कहते हैं कि अगर ईश्वरीतत्व का विचार न हो, अनुभव न हो, तो संध्या-तर्पण करने से क्या होता है ? या सिर मुँडाने से , तथा जटा रखने से क्या बनता है ? याने वह करना निरर्थक है । ईश्वरीतत्व को समझ लेना ही महत्वपूर्ण बात है ।

कबीरदास व्यर्थ के जप व्रतादि को पसंद नहीं करते थे । भगवान के भजन का परित्याग कर किए जानेवाले व्रत उन्हें पसन्द नहीं थे । उनका दृढ विश्वास था ।

" तिरथ व्रत्त नेम किए, ते सब रसातल जाहिं । "[३९]

तीर्थस्थान के संबंध में होनेवाली अंध श्रध्दाओं का भ्रम दूर करते हुए कबीरदास कहते हैं ---

" जो कासी तन तजै कबीरा,
तो रामहिं कहा निहोरा रे । "[४०]

जनश्रुति के अनुसार काशी में मृत्यु प्राप्त करनेवाले को मुक्ति प्राप्त होती है, इसका व्यर्थ स्पष्ट करते हुए कबीर ने यह स्पष्ट किया है कि अपने कर्मों से ही मनुष्य को मुक्ति प्राप्त हो सकती है, किसी तीर्थस्थान से नहीं ।

संक्षेप में कबीर के सहजधर्म में किसी प्रकार के बाह्याचारों का स्थान नहीं । उनका सहजधर्म हृदय की निष्कपटता, चरित्र की आचार प्रवणता और मन की शुध्दता पर आधारित है ।

" काम,क्रोध, तृष्णा ,तजै, ताहि मिलै भगवान । "[४१]

अर्थात् काम ,क्रोध,तृष्णा आदि का जो त्याग करता है, याने षड्‌ रिपुओं पर विजय प्राप्त करता है, उसे ही भगवान मिलते हैं ।

नग्नपंथी योगियों को तथा मुंडन करनेवालों को उन्होंने इस प्रकार फटकारा है --

" " नागें फिरे जोग जे होई, बन का मृग मुकुति गया कोई ।
मूँड-मुँडायें जौं सिधि होई, स्वर्ग ही भेड न पहुँची कोई ।। "[४२]

कबीर के जमाने में नग्न पंथिओं का प्रचलन था । उन्हें फटकारते हुए उनकी रहन-सहन की आलोचना करते हुए कबीर कहते हैं -- नग्न फिरने से अगर योग साध्य होता, तो बन में रहनेवाले मृग (जानवर) को कब की मुक्ति मिल गयी होती। उसी प्रकार अगर सिर्फ मुंडन मात्र से सिध्दि प्राप्त होती, तो मेड-बकरियाँ कब की स्वर्ग गयी होतीं ।

कुछ लोग केवल ब्रह्मचर्य को ही सबकुछ मानते और मात्र उसी के आधार पर मुक्ति प्राप्ति की आशा रखते थे । कबीर ने उनके सम्बन्ध में लिखा है ---

" बिन्दु राखे जो तरीं ये माई ।
खुसरे किउ न परम गति पाई ।।" ४३

कबीर काल में पुरुषों को खुसरे बनाने का प्रणात था । जिसके कारण वे पौरुषत्व हीन बनते थे । तो जो ब्रह्मचर्य पालन से हो (बिन्दु रखने से) परमगति प्राप्त करने में विश्वास करते थे, उनकी खिल्ली उडाते हुए कबीरदास कहते हैं, अगर बिन्दु मात्र रखने से परम गति प्राप्त होती तो खुसरे को परम गति क्यों न प्राप्त होती ?

कुछ लोग छापा-तिलक को ही सर्वस्व मान बैठे थे । उन्हें भी कबीर ने फटकारा है ।

" बैस्नो भया तो क्या भया, बूझा नहीं बिबेक ।
छापा तिलक बनाइ करि,दाध्या लोग अनेक ।।" ४४

वैष्णव पंथ में छापा-तिलक लगाने का जो बाह्याडम्बर है, वह किस प्रकार अयोग्य है , यह कबीर स्पष्ट करते हैं । वे कहते हैं अगर विवेक प्राप्त न हो तो वैष्णव होने से भी क्या होता है । छापा-तिलक लगा कर अनेक लोग दाध्या गए हैं ।

उस समय हिन्दुओं में प्रमुखत: शाक्त, शैव और वैष्णव तीन प्रकार के लोग थे । इन में वैष्णव अपेक्षाकृत अच्छे थे । शाक्त सब से अधिक पतित हो गये थे । मांस, मद्य आदि पंच मकारों का उनकी उपासना पध्दति में महत्वपूर्ण स्थान था ।

इसलिए कबीर ने उन्हें बहुत भला-बुरा कहा है ।

`साक्त से सूकर भला, सूवा राखे गाँव ।`[४५]

शाक्तों की निर्भत्सना करते हुए कबीरदास उन से भी सूअर को अच्छा मानते हैं, क्योंकि वह गाँव साफ रखता है ।

`साषात संगु न कीजिए, दूरहि जइये भागु ।
बासन कारो परसिये, तउ कछु लागै दागु ।।`[४६]

शाक्तों की संगति न करने के लिए कबीरदास कहते हैं । इतना ही नहीं, तो उन से दूर भाग जाने के लिए कहते हैं, क्योंकि उन की संगति मात्र से ही दोष लगने की संभावना है ।

अशिक्षा तथा उचित शास्त्र-ज्ञान के अभाव में हिन्दुओं ने मूर्ति को ही भगवान मान लिया था । उस की पूजा में ही लोग धर्म की इतिश्री मान बैठे थे । कबीर ने इसका भी तरह-तरह से विरोध किया ।

`पाहण केरा पूतला, करि पूजैं करतार ।
इही भरोसे जे रहे, ते बूडे काली धार ।।`[४७]

मूर्ति-पूजा की निरर्थकता स्पष्ट करते हुए कबीर कहते हैं, पत्थर का पुतला करके उसी को भगवान मानकर उसकी पूजा करते हैं और इस तरह इस पर भरोसा करते हैं, वे भयानक प्रवाह में डूब जाते हैं । स्पष्ट है, पत्थर हमें मुक्ति नहीं दे सकता । उसकी पूजा-अर्चना में लगे रहने से हम पवित्र बनते हैं , यह हमारा भ्रम है । इस के उलटे अगर हम सच्चे करतार (ईश्वर) पर विश्वास करें, उसका भरोसा करें, तो मुक्ति पा सकते हैं ।

`पाथर पूजे हरि मिले, तो मैं पुजूँ पहार ।`[४८]

अगर पत्थर पूजने से ईश्वर मिलता है तो मैं खुद पहाड ही पूजूँगा । इस तरह कह कर कबीरदास जी ने मूर्ति पूजा की खिल्ली उडाई है ।

' गढ़े देव को सब कोई पूजें, नित ही लावें सेवा ।' [४९]

ईश्वर की मूर्ति कर के उसकी पूजा सब करते हैं और उसकी सेवा में लगे रहते हैं । ईश्वर तो अलख-निरंजन हैं, तो उसकी मूर्ति बनाना यह तो पूर्णत: अनुचित बात हैं तथा उसकी सेवा में लगे रहना भी वैसी ही बात हैं । हमें चाहिए कि निर्गुण, निराकार को समझाने का हम प्रयत्न करें और उसकी ही सेवा में लगे रहे ।

आडम्बर युक्त जप,तप तथा माला फेरते रहने के बारेमें भी उन्होंने विरोध किया हैं ।

' जप-तप दिसें थोथरा, तिरथ व्रत बेसास ।' [५०]

जप,तप करना यह झूठ बात हैं और तीर्थाटन करने में कुछ अर्थ नहीं हैं । यह सब केवल आडम्बर हैं ।

' माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुँह माँहिं ।
मनुवाँ तो दस दिसि फिरे यह तो सुमिरन नाहिं ।।' [५१]

माला फेरकर जप-जाप्य करने की निरर्थकता कबीर स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ' माला तो कर में फिरती रहती हैं, उस समय नाम-जप के लिए जीभ मुख मे फिरती रहती हैं और मन तो दसों दिशाओं में फिरता रहता हैं । यह तो ईश्वर-स्मरण, चिन्तन नहीं हैं । माला फेरना ,नाम-स्मरण करना यह तो दिखावा हुआ । सब से महत्वपूर्ण बात ईश्वर में मन-चित्त की एकाग्रता हैं और अगर यह न हो तो बाकी बातें व्यर्थ हैं ।

कबीर ने हिन्दु समाज के धर्माडम्बरों पर जैसे प्रहार किया हैं, वैसे ही मुसलमान समाज के धर्माडम्बरों पर भी उन्होंने प्रहार किए हैं । सुन्नत ,हज,काबा, अजान, कुर्बानी,ताजिए आदि की खिल्ली उडाई हैं । सुन्नत के संबंध में वे कहते हैं --

" सुन्नति किए तुरक जो होइगा, औरत का क्या करियै ।
अध्द सरीरी नारि न छोडै ,ताते हिन्दू ही रहियै ।" [५२]

कबीरदास मुसलमानों के बाह्याडम्बरों पर भी करारी चोट करते हैं । उस जमाने में हिन्दु धर्म का त्याग करके कुछ लोग मुसलमान धर्म में परिवर्तित होते थे । उन्हें सच्चाई बतलाते हुए कबीरदास कहते हैं -- ` सुन्नत करने से अगर तुर्क (इस्लाम) होता तो भाई,औरतों का क्या करना चाहिए ? क्योंकि औरतें तो अर्धांगिन्नियाँ होती हैं । इसलिए यह धर्म परिवर्तन का विचार छोडकर हिन्दू ही रहिए ।

हज के सम्बन्ध में वे कहते हैं --

" सेत-सबूरे बाहिरा, क्या हज काबे जाइ ।
जाका दिल साबत नहीं,ताको कहा खुदाइ ।।" [५३]

मुसलमानों के हज-काबे (मक्का-मदिना) करने की खिल्ली उडाते हुए कबीरदास कहते हैं ` कि अगर अंत:करण साबूत नहीं तो हज,काबा करने से खुदाई कहाँ से ` होती है ? इससे स्पष्ट है ईश्वर सम्बन्धी ईमान (विश्वास भरोसा) कायम हो तो हर जगह हज-काबा है और सभी जगह खुदा का नूर है ।

" आजान के सम्बन्ध में वे कहते हैं --

" मुल्ला मुनारे क्या चढहिं सोइ न बहरा होइ ।
जाँ कारन तू बाँग देहि दिल ही भीतर सोइ ।।" [५४]

" कौंकर पाथर जोरिकर मस्जिद लया चिनाय ।
ता चढि मुल्ला बाँग दै, क्या बहिरा हुआ खुदाय ।।" [५५]

मुसलमान मस्जिद में जाकर जोर-जोर से बाँग देते हैं । ईश्वरी प्रार्थना करते हैं, खुदा की इबादत करते हैं । इस बाह्याडम्बर पर कबीर ने यह व्यंग्य कसा है । कबीर के मतानुसार पाक दिल से खुदा की इबादत करना,दुआँ माँगना,सच्ची

प्रार्थना है । खुदा तो दिल के भीतर ही है । वे कहते हैं अरे मुल्ला ! अनेकों पत्थर, कंकड जोड-जोड के तूने मस्जिद बनवा ली और उस पर चढ कर जोर-जोर से तू बाँग देता है, क्या तेरा खुदा बहरा है ?

कुरबानी और हलाल के बारे में कबीरदासजी ने कहा है --

" गाफिल गरब करै अधिकाई ।
स्वारथ अरथि बधै ए गाई ।"[५६]

" जाको दूध धाइ करि पीजै । ता माता को बध क्यों कीजै ।"[५७]

मुसलमान कुरबानी और हलाल के नाम जो जीव-हिंसा करते है, उसे कबीरदास दोषापूर्ण मानते हैं, और हिंसा से उन्हें रोकने का प्रयत्न करते हुए समझाते हैं कि उनका वह कृत्य सत्कर्म नहीं बल्कि दुष्कर्म है ।

जिस का हम दूध पीते हैं, उस माता का (गो माता) वध हम क्यों करें ? उस उपकारी गोमाता का वध नहीं करना चाहिये ।

" इस प्रकार कबीरदास ने बाह्याचार मूलक धर्म की जो आलोचना की है उसकी एक सुदीर्घ परम्परा थी । इसी परम्परा से उन्होंने अपने विचार स्थिर किए थे । इनके समय में एक और भी प्रधान धर्ममत भारत वर्ष में आ चुका था । उसमें भी बाह्याचार की प्रबलता थी । कबीरदास ने स्वयं इस धर्म द्वारा प्रभावित वंश में जन्म ग्रहण किया था इसलिए उसकी आचार-बहुलता से वे भी परिचित थे । परन्तु मुल्ला और काजी को भी वे ' पण्डित ' के समान ही अदना और हीनवीर्य समझाते रहे । ऐसा नहीं जान पडता कि उन्होंने मुसलमान धर्म के बाह्याचारों के सिवा उसके किसी अंश की गहरी जानकारी प्राप्त करने की चेष्टा की हो । उन्होंने सुन्नत बाँग और कुरबानी आदि की खरी आलोचना की है ।"[५८]

डा. रामकुमार वर्मा का कथन है --

" कबीर ने धर्म के क्षेत्र में ऐसी क्रान्ति उपस्थित की, जो किसी धर्म के आचार्य द्वारा जनता के बीच में अभी तक उपस्थित नहीं की जा सकी थी । उन्होंने

पहली बार इस धार्मिक क्रान्ति के सहारे जनता के हृदय में अपने धर्म के लिए ऐसी सच्ची श्रध्दा का बीज वपन किया जो अनेक युगों तक राजनीति और अन्य धर्मों के प्रचण्ड आघातों से भी जर्जरित नहीं हो सका । यह विचार-धारा जनता के लिए एक ऐसी शक्ति बनी जिसके द्वारा कबीर के जीवन का सबसे बड़ा बल सिध्द हुआ ।[५९]

निष्कर्ष --

कबीर के मतानुसार जीव और ब्रह्म का अभिन्न सम्बन्ध है । जीव भी ब्रह्मांश है । वह ब्रह्म को एक अद्वैत, भेदातीत, स्वयं प्रकाश, स्वयं सिध्द, भावनागम्य, सच्चिदानन्द स्वरूप , बुध्दि से परे मानते हैं । वे जीव को भी निराकार, अनंत, निर्विकार, स्वयंप्रकाश, सच्चिदानन्द रूप मानते हैं । जीव और ब्रह्म का ऐक्य निर्माण करने के लिए कबीर ने भारतीय ब्रह्मवाद के साथ-साथ सूफियों का भावात्मक रहस्यवाद, हठयोगियों का साधनात्मक रहस्यवाद, वैष्णवों का अहिंसावाद तथा प्रपत्तिवाद का एक अनोखा मेल किया । हठयोग साधना पर जोर न देते हुए सहज साधना को अपनाया । सूफियों की माधुर्य भाव-भक्ति को अपनाया । नाथ पंथियों के पंच मकारों का विरोध किया । हृदय की निष्कपटता, सरलता और मन की शुध्दता आदि पर तो जोर दिया ही और समाज में साम्यवाद की प्रतिष्ठा प्रस्थापित की । उनका साम्यवाद इस्लामिक साम्यवाद की व्यावहारिकता और भारतीय अद्वैतवाद की ज्ञानात्मकता का सुन्दर समन्वय है ।

कबीर के सहज धर्म में किसी प्रकार के बाह्याचारों का स्थान नहीं । उनका सहज धर्म हृदय की निष्कपटता , चरित्र की आचार प्रवणता और मन की शुध्दता पर आधारित है ।

कबीर ने जीवन की जटिल समस्याओं को सुलझाया और धर्म और दर्शन के ऐसे सिध्दान्त निरूपित किए, जो सरलता से जनता द्वारा हृदयंगम किए जा सकते थे । जीवन के अंग-प्रत्यंग की समीक्षा कर उन्होंने धर्म और जीवन को इतना सरल और साधन संपन्न बनाया कि वह प्राणों में निवास करने योग्य बन गया । हिन्दुओं

और मुसलमानों के बीच की साम्प्रदायिक सीमा तोड़कर, उन्हें वे एक ही भाव धारा में बहा ले जाने का अपूर्व कर्म दिखा गए। कबीर के विचारों में धार्मिक पाखण्डों और अंधविश्वासों को तोड़ने का विद्युत् वेग था। जहाँ भारतीय समाज में हिन्दू और मुसलमानों के बीच बंधुत्व-भाव का अंकुर उत्पन्न करना कबीर का अभिप्राय था। वहाँ व्यक्तिगत साधना की पुनित अनुभूति भी उनका लक्ष्य था। अपने स्वतंत्र और निर्भिक विचारों से उन्होंने सुधार के नवीन मार्ग की ओर संकेत किया। उनकी समदृष्टि ने ही उन्हें सर्वजनिन और सार्वभौमिक बना दिया।